

रचयिता -परिचय -कण

जन्मतिथि : ६ अगस्त, १९१५

माता का नाम :

स्व० श्रीमती रामराजी पाण्डेय

पिता का नाम :

स्व० पं० गोपालजी पाण्डेय

बालविवाहिता :

स्व० श्रीमती रोशनी पाण्डेय

युवापरिणीता :

स्व० श्रीमती चन्द्रावती पाण्डेय

जन्मस्थान : शाहपुरपट्टी, जिला-भोजपुर, (बिहार)

१. स्वाधीनता-संग्राम में : १९३० एवं १९४२ ई०, अन्ततः कारावास, पेन्शन-परित्याग।

२. व्यवसाय : पत्रकारिता। प्रधान सम्पादक, दैनिक 'नवराष्ट्र', दैनिक 'विश्वमित्र' साप्ताहिक 'अग्रदूत', 'स्वदेश', 'नवीन बिहार', 'बिहार-जीवन', मासिक 'पाटल' एवं 'बालक'।

३. व्यवसायक्रम में कार्यक्षेत्र : कलकत्ता, काशी, कानपुर, पटना, भागलपुर।

४. उच्चतम सम्मानोपाधि : 'साहित्यवाचस्पति', हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की उच्चतम सम्मानोपाधि।

५. उच्चतम गैरसरकारी पद : अध्यक्ष, बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (तीन बार), अध्यक्ष : बंग प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन। वरिष्ठ उपाध्यक्ष, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

६. उच्चतम सरकारी पद : बिहार-सरकार की हिन्दी-समिति के द्वितीय (अंतिम) अध्यक्ष। प्रथम अध्यक्ष थे डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'।
प्रथम पूर्णकालिक अध्यक्ष : बिहार सरकार की हिन्दी प्रगति समिति। प्रथम अध्यक्ष : हिन्दी विधायी उपसमिति।

७. बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के प्रति बिहार-सरकार की उपेक्षानीति के विरोध में एकमात्र पदत्यागी निदेशक।

८. प्रकाशित काव्यकृतियाँ : १. 'गणदेवता (संग्रह), २. 'अशोक' (प्रबन्ध-काव्य), ३. 'शक्तिमयी' (काव्यचयनिका), ४. 'राष्ट्रव्यंजना' (काव्यचयनिका), ५. 'युगान्तर' (प्रयोगात्मक महाकाव्य), ६. 'लोकायन' (प्रयोगात्मक महाकाव्य) ७. 'युवाज्योति' (युवाशक्ति-काव्य, ६ सर्ग), ८. 'नवोदय', (बालक-बालिकाओं के सन्दर्भ में (छः सर्ग)।

९. प्रकाशन हेतु '९ मन्वन्तर' (महाकाव्य), १०. 'अमृत' (प्रयोगात्मक प्रबन्ध-काव्य) ११. 'पंचतत्त्व' (प्रबन्ध-कविता), १२. 'कर्मोविनिषद्' (प्रबन्ध-कविता), १३. 'विप्लव' (प्रबन्ध-कविता)

पता : 'देवगीत', आशियाना नगर, पटना - ८०० ०१४ (बिहार)

नवोदय

रामदयाल पाण्डेय

नवोदय



रामदयाल पाण्डेय

‘नवोदय’

(बालक-बालिकाओं के जीवन-निर्माण के सन्दर्भ में सात सर्ग)

: रचयिता :

रामदयाल पाण्डेय

: प्रकाशक :

पाण्डेय रचनावली प्रकाशन

‘देवगीत’, आशियाना नगर

पटना - ८०० ०१४

(बिहार)

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान :
पाण्डेय रचनावली प्रकाशन
'देवगीत', आशियाना नगर
पटना - ८०० ०१४

प्रथम संस्करण
प्रकाशन - वर्ष : १९९३ ई.

मूल्य : पचहत्तर रुपये

मुद्रक :
मनीष ऑफसेट
४/५७, राजेन्द्र नगर,
पटना - ८०० ०१६

सादर स्मृति-तर्पण

बाबू रामदीन सिंह

बाबू रामरणविजय प्रसाद सिंह

आचार्य रामदहिन मिश्र

आचार्य रामलोचन शरण

श्री जयनाथ मिश्र

श्री शिवेन्द्र नारायण

श्री रामेश्वर सिंह कश्यप

डा० सीताराम 'दीन'

श्री मोहन लाल बिश्नोई

का

रामदयाल पाण्डेय द्वारा

सस्नेह समर्पण

चि० प्रेमकुमार पाठक 'प्रेम'
स्थान एवं डाकघर–बेनीपट्टी
जिला-मधुबनी (बिहार)

एवं

चि० रामबालक प्रसाद

स्वत्वाधिकारी, न्यू साहनी प्रिंटिंग प्रेस,
४/५६, राजेन्द्र नगर,
पटना-८०० ०१६
को

शुभाशीषपूर्वक
–रामदयाल पाण्डेय

आमुख

मेरी अभिनव प्रकाशन-यात्रा के क्रम में यह छठी काव्यकृति(चयनिका) बालक-बालिकाओं के जीवननिर्माण के सन्दर्भ में प्रस्तुत है–'नवोदय'। नवोदय की महत्त्वानुभूति मानव-समाज को प्रति दिन प्रातःकाल ही होती है। इसी प्रकार बालक-बालिकाओं के जीवन-निर्माण का महत्त्व भी प्रत्यक्ष एवं निर्विवाद है। वस्तुतः वे ही तो राष्ट्र के भावी आशा-कुसुम एवं निर्माता और कर्णधार हैं। महत्त्व उनकी बड़ी संख्या का नहीं अपितु सम्यक्क्, पोषण, संरक्षण, शिक्षण-प्रशिक्षण और मार्गदर्शन का है, और है सम्यक् अभिभावकत्व का भी। उनके प्रति माता-पिता, अन्य अभिभावकगण, शिक्षक-वृन्द, शिक्षण-संस्थानों और समग्र राष्ट्र का दायित्व है। इन सारे विषयों को काव्यवाणी में उजागर करना ही इस कृति का उद्देश्य है। दुःख है कि प्रकाशन-साधन के अभाव में 'युवाज्योति' की भाँति इसे भी अत्यन्त संक्षिप्त रखना पड़ा है। यदि बालक-बालिकाओं के जीवन-निर्माण से सम्बद्ध पक्ष इसपर समुचित ध्यान देंगे और लाभान्वित होंगे तो रचयिता अपने श्रम को सार्थक मानेगा। अस्तु।

साधनाभाव कम हो सकता था यदि मैंने विशिष्ट हिन्दी-सेवी-सम्मान की (ग्यारह हजार रु.) राशि बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को हिन्दी-साहित्यकार कल्याणकोष की स्थापना हेतु एवं बिहार पत्रकार कल्याण-कोष को अर्पित न कर दी होती। किन्तु मैं तो अपनी इस सिद्धान्तनिष्ठा पर दृढ़ था कि सेवा का मूल्य नहीं लेना चाहिए। १९८२ ई. में भी पुरस्कार के रूप में सरकार से प्राप्त दस हजार रु. की राशि अपने लिए नहीं रखी थी अपनी इस सिद्धान्तनिष्ठा के कारण। मैं सिद्धान्त से बढ़कर किसी भी वस्तु को नहीं मानता और न कभी भी मानूँगा।

रामदयाल पाण्डेय
'देवगीत'
आशियाना नगर
पटना-८०० ०१४

बुधवार
शारदा पंचमी (वसन्त पंचमी, २०४९ वि०)
२७ जनवरी, १९९३ ई.

सर्गानुक्रम

नवोदय

प्रथम सर्ग

देखता जब मैं नवांकुर की समुन्नति,
क्या कहूँ, कितना मुझे उल्लास होता!
स्वस्थ, सुचरित, सबल जब मैं देखता हूँ,
तब नवोदय का मुझे विश्वास होता।

जन्म या उद्भव कहाँ पर्याप्त होते?
सर्वदा सर्वत्र आवश्यक नवोदय;
है यही करता भविष्यत् को समुन्नत;
चाहिए सम्भावनाओं का समुच्चय।

दुख होता, यदि सुमन हँसते नहीं हैं,
यदि नहीं तरु मस्त होकर झूमते हैं,
विहग यदि उड़ते नहीं उन्मुक्त होकर,
यदि नहीं अलमस्त मानव घूमते हैं।

भूमि यदि रहती कठिन, चिन्ता भला क्या?
कठिन को भी सरल है मानव बनाता;
मेरु से भागीरथी को प्राप्त करता,
बिन्दु में है सिन्धु का गौरव दिखाता।

रिक्त गागर में उदधि भरता मनुज है;
शैल पर उद्यान है सुन्दर लगाता,
नाग से भी वह कहाँ भयभीत होता?
उग्र फणि पर बाँसुरी हँसकर बजाता।

ज्वार में भी वह जगाता ज्वार नूतन,
वह मरुस्थल में हँसाता हरित मधुवन।
गीत जब मधुमास के देता न कोकिल,
मस्त होकर नर सुनाता मधुर गायन।

चाहिए शिशु को सुपोषण; क्यों कुपोषण?
चिर इसीसे तो सुलभ आरोग्य होता,
यदि नहीं आरोग्य हो तो बल कहाँ से?
उर्वरक देता कृषक यदि बीज बोता।

बीज के ही सदृश तो होते नवल शिशु;
गुण अपरिमित चाहिए, परिमाण सीमित;
सन्निहित है शक्ति संख्या में न होती,
सुरभि का परिमाण क्या होता अपरिमित?

धन रहे सीमित, असीमित किन्तु सद्व्यय;
अधिक धन का अधिकतर होता अपव्यय;
बल असीमित यदि रहे, अन्याय होगा,
शक्ति संयत चाहिए, हो मनुज निर्भय।

मानता हूँ, सन्तुलन रखना कठिन है;
क्या न धन-जन सन्तुलित होते अपेक्षित?
सन्तुलन वांछित सदैव विचार में भी;
सन्तुलित आहार में ही स्वास्थ्य है नित।

बाल रवि की रश्मि सर्वोपरि नहीं क्या।
निहित उसमें विश्व का दैनिक प्रभोदय;
चाहिए इस भाँति ही होना नहीं क्या?
नवल शिशुओं का नवल इतिहास अक्षय?

क्षय भला क्यों हो कभी प्रत्यूष में ही?
उदित होते ही भला क्या अस्त होना?
चाहिए उन्मुक्त रह, हँसना-हँसाना;
क्या कभी सर पर पड़ेगा भार ढोना?

क्यों भला आरम्भ में ही दीनता हो?
क्या नहीं हों सुलभ सम्यक् प्राण-साधन?
न्यास जब जीवन-शिला का हो रहा हो,
क्या रहे लघु शिशु महादुर्बल-अकिंचन?

प्रात में ही तो दिवा-बल सन्निहित है,
क्या नहीं उसमें रहे आलोक उज्ज्वल?
क्या मुकुल को मूलतः दुर्बल करें हम?
सर्वथा रहता नहीं क्या वह सुकोमल?

पौध को यदि हम नहीं करते सुपोषित,
क्या भला उसको सुविकसित कर सकेंगे?
सन्तुलित, सज्जित, सुयोजित भी करेंगे;
तब कहीं उद्यान छवि से भर सकेंगे।

मनुज होते जब सुशिक्षित हैं, तभी तो
प्राप्त उनसे हैं कहीं अवदान होता;
चाहिए अवसर सुलभ होना सभी को;
हाँ, तभी नर कर्म-क्षम, विद्वान् होता।

सहज कोई पन्थ तो होता नहीं है;
यत्न से पड़ता सदा उसको बनाना;
गीत भी यों ही सुलभ होते नहीं हैं;
चाहिए रचना, स्मरण करना, सुनाना।

स्वर सुलभ हों गीत-रचना के अनन्तर;
छन्द-रचना-कार्य क्या होता सरल है?
काव्य रचने के लिए कवि भी अपरिमित
कष्ट सहता और चिर पीता गरल है।

प्रथम तो है काव्य भी होता नवांकुर;
कवि कृषक भी दुःख सहकर पालता है;
जानता है कौन क्या कवि-कर्म होता?
प्राण भी कवि संकटों में डालता है।

है नवांकुर भी तभी रक्षित-सुविकसित
जब सुपालक सुलभ होता, कष्ट सहता;
उदित यों करना भविष्यत् को पड़ेगा;
सर्वदा इसमें निहित सुख-समय रहता।

ज्यों बना है वर्त्तमान अतीत-बल से;
वर्त्तमान भविष्य को रचता निरन्तर;
विगत का सर्वस्व आगत को मिला है;
क्या न आगत भी अनागत को सके भर?

यों कभी होती कहाँ युग की प्रगति है?
चाहिए श्रम और धन का भी समर्पण;
एक से ही काम चल पाता नहीं है;
चाहिए उन्नत नवोदय के लिए प्रण।

तन हुआ है पंचतत्त्वों से नि
क्या नहीं हों मन, हृदय, आत्मा सुपोषित?
चिर कला से, ज्ञान से, सत्कर्म से ही
निज मनुजता को मनुज करता सुबोधित।

वचन की भी क्या नहीं वांछित सुशिक्षा?
सद्वचन, सत्कर्म का मानव धनी हो;
क्यों न सद्व्यवहार का आभास भी हो?
क्यों किसी पर भृकुटि पल भर भी तनी हो?

सत्पथों पर ही प्रगति होती अपेक्षित;
क्या नहीं अनिवार्य है सम्यक् प्रशिक्षण?
दूरदर्शी हो मनुज, हो कल्पना शुभ;
क्या नहीं सद्भावना का हो सुवर्धन?

चाहिए शुभकामना भी क्या नहीं चिर?
क्या नहीं इसके लिए अभ्यास वांछित?
क्या नहीं उपयुक्त शिक्षा दे सकें हम?
चिर नवोदय हो सुकल्पित, सुव्यवस्थित।

काल-रन्ध्रों में मधुर स्वर भर सके नव;
भाँति इस हो चिर नवोदय भी सुमण्डित;
कर सके अनुगूँज भी सद्भाव-निर्मित,
हों सुमन शुभकामनामय, रुचिर, सुरभित।

कालसीमित क्या कभी कविता हुई है?
चिर नवोदय नवल काल-प्रवाह देता;
यह नवलता सुजन-सुखदा ही अपेक्षित;
मेघ भूतल से कहाँ प्रतिदान लेता?

सन्निहित विभुता सतत समुदारता में,
क्या भला अनुदारतामय हो सुचिन्तन?
निखिल शुभताएँ करे मानव समेकित,
भग्न कर पाये अखिल संकीर्णता-कण।

सतत चलता है नवोदय का सुखद क्रम;
किन्तु सुनियोजित व्यवस्था में निहित वह,
यह व्यवस्था है सदा कर्त्तव्य नर का;
चाहिए पर्याप्त साधन, अनवरत श्रम।

भूल कर सकता नवोदित तो हुआ क्या?
भूल स्वाभाविक; अपेक्षित है दिखाना;
सतत आवश्यक सुधार-प्रयत्न भी है;
है सिखाना अनवरत, पथ पर चलाना।

भाँति जिस होती सुशिक्षा प्रयोगात्मक,
चिर प्रयोगों की व्यवस्था है अपेक्षित;
इस तरह करते सुधार सदा रहें सब,
प्रगति का है मार्ग होता यह सुनिश्चित।

क्या प्रयोगों का कभी है अन्त होता?
मनुज का जीवन इन्हीं में तो निहित है,
है सदा जीवन सुधारों से सँवरता,
मानवों का विहित जीवन यह विदित है।

जो नवोदित हैं, उन्हें क्या दोष देना?
वे कहाँ कोई कभी अपराध करते?
क्या न अपराधी सदा होते वही जो,
जन्म देते, पर नहीं आलोक भरते?

गुरुजनों का भार भी उनपर सदा है,
प्रौढ़ या कि वयस्क बनकर जो खड़े हैं;
जर मनुज निज क्या नहीं सर्वस्व देते ?
विवशता में भारवत् होकर पड़े हैं।

कर चुके हैं यथासम्भव कर्म अपने,
विवश होकर वे भला क्या कर सकेंगे ?
दे चुके हैं द्रव्य कुल, दें और कैसे ?
मात्र अनुभव-कोष ही तो शेष देंगे।

यह त्रिकाल-समान ही क्रम चल रहा है;
विगत, आगत, नव अनागत ही बढ़ेगा;
क्या न आगत चिर भविष्यत् को बनाये ?
यदि नहीं, परवान पर युग क्या चढ़ेगा ?

उत्तरोतर प्रगति ही होती अपेक्षित,
क्या अधोगति या कि अनुगति है सुवांछित ?
क्या नहीं समुचित व्यवस्था करे आगत ?
चाहता है यदि, भविष्यत् हो सुनिर्मित।

क्या भला यों ही कदापि समाज बनता ?
जन्म देना ही नहीं कर्त्तव्य सम्यक्;
चाहिए निर्माण भी करना चुतर्दिक्;
चिर भविष्यत् हेतु है दायित्व व्यापक।

राष्ट्र के होते भविष्यत् हैं नवोदित;
काम्य है निर्माण उनका पूर्ण समुचित,
चाहिए समुचित व्यवस्था भी निरन्तर,
सुव्यवस्था ही करेगी चिर सुविकसित।

बाल-दिवसों तक नहीं कर्त्तव्य सीमित;
प्रति दिवस हो वास्तविक कर्त्तव्य का दिन,
औपचारिकता नहीं पर्याप्त होती,
व्यावहारिक भी करें कर्त्तव्य गिन-गिन।

शेष कोई भी बचे कर्त्तव्य क्यों निज ?
क्या नहीं प्रत्येक का हो पूर्ण पालन ?
शब्दगत संचेतना से काम चल पाता कहाँ है ?
सतत कार्यान्वियन ही उपयुक्त साधन।

सर्वदा कर्त्तव्य कवि का है सुलेखन,
हो नहीं पाये भले उसका प्रकाशन;
जो प्रकाशित हो सका, सन्तोष देता;
सतत हो कर्त्तव्यपालन का सुबन्धन।

चिर युवा पीढ़ी करे कर्त्तव्य पूरे,
वह अखिल दायित्व दृढ़ता से सम्हाले,
चिर नवोदित हेतु रुचिर उदाहरण हो;
है वही संस्तुत्य, जो बीड़ा उठा ले।

मानता, होता कठिन कर्त्तव्य-पालन,
अनवरत यदि श्रम करे, मिलता रहे बल,
क्या नही कुछ कर सके क्रीड़ा-सुकौतुक?
कुछ नवोदित को सिखाये खेल-हलचल।

है उछलना-कूदना ऊर्जा बढ़ाता,
चाहिए यह शक्ति, हो मधु मनोरंजन,
सीख ले संगीत, बच्चों को सिखाये,
नृत्य-नाट्यों में निहित है स्वस्थ यौवन।

चाहता जीवन कि हों अँगड़ाइयाँ कुछ,
हों सुलभ उनके लिए पर्याप्त साधन,
चिर कला में निहित जो अँगड़ाइयाँ हैं,
चाहिए, उनके लिए हो कला-सेवन।

हो कला विज्ञान से सम्यक् समन्वित;
चाहिए साहित्य को भी पन्थ अभिनव;
सरल एवं सुगम हो चिर मार्ग उसका;
सर्वदा साहित्य होता लोक-वैभव।

हो नहीं साधन-रहित कोई नवोदित,
तब नवोदय प्राप्त करता पूर्ण गौरव;
पूर्ण सार्थकता तभी है प्राप्त होती,
चाहता क्या है भला वह विश्व-वैभव?

क्या नवोदित भार बन सकता कभी है,
उपकरण यदि प्राप्त हों जीवन-प्रगति के?
निहित उसमें भी नहीं रहते सदा क्या;
तत्त्व सारे प्राणमय सुरभित सुमति के?

यदि सदाशयता रही हो पीढ़ियों में,
क्या नवोदित भी नहीं होंगे सदाशय ?
क्या नहीं सम्यक् सतत नीयत रहेगी ?
क्या करेंगे वे भला उत्पन्न संशय ?

क्यों नवोदित हों सदा उपमेय केवल ?
क्या नहीं वे उच्चतम उपमान भी हों ?
क्या भला तम-ग्रस्त बनकर वे रहेंगे ?
क्या नहीं वे प्रभामय दिनमान भी हों ?

चाहिए शालीनता, गरिमा निरन्तर;
वे उठें उच्चतर, अवसर यदि मिलें तों;
क्या नहीं परिवेश हो शालीनता-प्रद ?
किन्तु कैसे, यदि नहीं कलियाँ खिलें तो ?

काल के अनुरूप आवश्यक व्यवस्था
हो, कि बढ़ता काल जाता;
मनुज की यात्रा अनन्त सुदूर की है;
विगत-आगत ही रहेंगे क्या विधाता ?

चाहते अभिवृद्धि हैं कवि सद्‌गुणों की;
सतत पूर्वागत सुछवि आगे बढ़ायें;
शुक्ल-शशि की ज्योति है जिस भाँति बढ़ती,
चिर व्यवस्था में अधिक नव ज्योति लायें।

सत्य सुनने में व्यथा कुछ हो भले ही,
चाहिए सुनना उसे ही और कहना;
सत्य से ही तो सुधरती है व्यवस्था;
चाहिए ही सत्य का आघात सहना।

क्या नहीं तैयारियाँ होतीं अपेक्षित ?
क्या नहीं उन्मुक्त करनी हैं दिशाएँ ?
नव विहंगम को मिले आकाश पूरा;
नीड़ भी व्यापक बनाकर हम दिखायें।

काव्य होता है सदैव प्रकाशदायक,
क्या नहीं सुविकास-कल्पक भी बनायें,
चाहते सुविकास ही अपना नवोदित,
समझ पायें हम इसे अथवा न पायें।

कीर्तिमानों की निरन्तर वृद्धि होगी,
यदि नवोदित को मिले सम्यक् व्यवस्था,
भव्यता सुविकास ला पाती कहाँ है
जीर्ण, जर्जर, रुग्ण या निष्क्रिय अवस्था ?

कल्पना-विस्तार होता हो अनवरत;
लक्ष्य उसका क्या नहीं चिर मंगलम् हो ?
क्या नहीं उत्सर्ग चिर आगत करेगा ?
श्रम-निवारण का विमुक्त-अबाध क्रम हो।

द्वितीय सर्ग

दें सतत प्यार ही शिशुओं को,
बच्चा हो अथवा हो बच्ची;
मिट्टी तक को भी कुम्भकार
देता अवश्य, यदि हो कच्ची।

शिशु भी तो कच्चे ही रहते;
उनको सम्हालना पड़ता है,
वे कर पायें कुछ उछल-कूद,
कर से उछालना पड़ता है।

उँगली पकड़ानी पड़ती है,
वे खड़े हो सकें, चल पायें,
रखना पड़ता है दूर अनल,
से, कहीं नहीं वे जल जायें।

मेघों से ही क्या ? बूँदों से
भी है रक्षा करनी पड़ती,
वे भींग न जायें, और कभी
पग में कंकड़ी न हो गड़ती।

कंकड़ियों से ही नहीं, उन्हें
कंटक से सदा बचाना है,
लोरी ही नहीं, भैरवी भी
गाकर संगीत सुनाना है।

हाँ, स्वयं नाचकर भी उनको
सुखदायक नृत्य सिखाना है,
वे भूल न जायें, बार-बार
उँगली से पन्थ दिखाना है।

देना है उनको दिशा-ज्ञान,
दिन में भी बनकर ध्रुवतारा,
आवेश छोड़कर, नीचे ही
रखना पड़ता अपना पारा।

मझधारों से रक्षा करनी,
देना सर्वत्र किनारा है;
तैरना सीख लें, किन्तु नहीं
डूबें, देनी वह धारा है।

देनी है दीप जलाने की
शिक्षा, न किन्तु वे जल जायें,
नव ज्योति और नव रचना के
वे गीत सर्वदा ही गायें।

हैं आशा-गीत उन्हें देने,
उनका हौसला बढ़ाना है;
करतल-ध्वनि से प्रोत्साहित कर
उनमें उत्साह जगाना है।

वे दीपावली मनायें चिर,
हों ईद और होली प्रतिदिन;
प्रति दिन हो अच्छा शुक्रवार;
वैशाखी पर्व रहें अनगिन।

दें प्यार सभी शिशुओं को हम;
हों मजहब-धर्म नहीं बाधक;
जातियाँ नहीं देखें उनकी,
कुल शिशुओं के हों आराधक।

हैं आराधना-योग्य होते
धरतीतल के बच्चे सारे;
है भेदभाव करना घातक,
सब होते आँखों के तारे।

यदि भेदभाव हैं हम करते,
हैं करते कण भी घृणा-द्वेष,
सन्देह नहीं, उन सबको ही
होगा मर्मान्तक महाक्लेश।

वे नहीं जानते भेदभाव;
फिर क्यों हम भेद सिखायेंगे ?
आपस में लड़ने-भिड़ने का
क्यों घातक मार्ग दिखायेंगे ?

उनमें नैसर्गिक विश्व-प्रेम;
हैं वे सब भाई-बहन सदृश;
है दुःख उन्हें होता अतीव,
यदि उनमें कोई भी हो कृश।

स्वर्गिक से बढ़कर जग उनका
है, क्यों हम उसे मिटायेंगे ?
उनके जीवन में अमृत भरा,
क्यों विष-पथ पर ले जायेंगे ?

वे दया-मूर्ति, सहयोग-मूर्ति;
वे बाँट-बूँट कर खाते हैं;
तितली पर भी छाया करते;
उष्मा से उसे बचाते हैं।

उनको प्रिय हैं सारे शावक;
वे रहें श्वान या मृगशावक;
मार्जारी को मौसी कहते;
सम हैं मानते तुहिन-पावक।

समता की हैं साक्षात् मूर्ति;
रखते वैषम्य-दुराव नहीं;
वे अपने और पराये में
रखते कोई टकराव नहीं।

उनके हित सब जन अपने हैं;
कोई भी नहीं पराया है;
कर पाती उनको ग्रस्त नहीं
दुनिया की कोई माया है।

रखते हैं कोई लोभ नहीं,
चाहे हीरक या काँच मिले;
कोई भी रखते भेद कहाँ,
हो कैक्टस या कि गुलाब खिले?

जैसे फूलों के विविध रंग,
वे किन्तु सुमन ही रहते हैं;
शिशुगण भी होते सुमन सदृश,
हम हिन्दू-मुसलिम कहते हैं।

शिशुओं का रहता एक देश,
है विश्व एक उनका रहता,
जो जातिवाद, फिरकाबन्दी,
उनका समाज अनुचित कहता।

यह रूप नहीं बदलें उनका;
ऐसे स्वरूप में रहने दें;
वे जो कहना चाहते उसे
उन्मुक्त भाव से कहने दें।

चाहिए नहीं उनको असत्य;
चाहते नहीं कोई तिकड़म;
हैं ये बुराइयाँ तो उनको
सिखलाने वाले होते हम।

सच कहने से वंचित करते,
बोलना असत्य सिखाते हैं;
वे हैं नैसर्गिक सत्य-मूर्ति;
उनका यह रूप मिटाते हैं।

अपशब्द नहीं वे सुनें कभी;
छल करें कि कभी असत्य कहें ?
वे नहीं चाहते हैं, समाज
की जड़ धारा में कभी बहें।

वे सत्य-न्याय के आकांक्षी,
वे प्रेम-ऐक्य के पन्थी हैं,
उनको छल-कपट सिखायें क्यों ?
वे सदाचार-सद्ग्रन्थी हैं।

शिशु स्वर्ग-सदृश मानते जगत्
को, घृणा नहीं करते कदापि;
उनका यदि अहित करे कोई,
हैं शत्रु नहीं बनते तथापि।

बन सत्य-अहिंसा के प्रेमी,
हो सकते नव गाँधी महान्,
बन सकते तीर्थंकर-गौतम;
ईसा-हजरत-नानक समान।

सकते हैं रूठ कभी पल भर,
रूठना भूल फिर जाते हैं;
सबको ही अपना मित्र समझ,
फिर सबको गले लगाते हैं।

बेजोड़,पूर्ण इतिहास विरल;
है सुलभ अभी उपमान कहाँ ?
वे रहते उस ऊँचाई पर,
जाता न पाप शैतान जहाँ।

उनमें है सम्भावना अमित,
बन सकते हैं वे महाधीर;
वे बन सकते विद्वान् परम;
बन सकते हैं बल-कर्मवीर।

वे राष्ट्र-विश्व के कण-कण में
सम्भव सब कुछ कर सकते हैं;
जन-जन में सारी वसुधा के
वे नये प्राण भर सकते हैं।

उनकी क्यों करें उपेक्षा हम ?
क्यों उनको सुविधा अल्प मिले ?
पर्याप्त मिलें साधन यदि तो,
प्रतिभा-सरसिज बेजोड़ खिले।

वे नहीं एक-आयामी ही,
बहु-आयामी भी बन सकते;
जर्जर जगती को प्रति पल वे
दे नवजीवन-यौवन सकते।

हम अल्पगुणी क्या समझेंगे.
कितनी है उनमें गुणवत्ता ?
बढ़कर दे सकते हैं नवीन
कल्पना, ज्योति, शासन-सत्ता।

वे नया समाज, राष्ट्र अभिनव,
नूतन संसार बना सकते;
सबको देकर उत्सव प्रति दिन,
वे सबके संग मना सकते।

वे नया सदन ओ ग्राम नये,
सकते हैं नये नगर भी रच;
वे अखिल कल्पनाएँ सुन्दर
दिखला सकते हैं करके सच।

मरु में उद्यान लगा सकते;
हैं सारी भूमि हँसा सकते;
हम स्वर्ग-कल्पना जो करते,
भूतल पर उसे बसा सकते।

क्या नहीं भला वे कर सकते ?
काँटों में फूल खिला सकते,
जो नहीं दूध का कण पाते,
उनको पीयूष पिला सकते।

ऐसा न समझ लें, खेल-खिलौनों
तक रह जायेंगे सीमित;
या रोते ही रह जायेंगे,
होकर भूलों से अतिकुण्ठित।

विज्ञान सींख सकते समस्त;
कर सकते आविष्कार नये;
वे वसुन्धरा को दे सकते
नित जीवनमय उपहार नये।

रहते सुधार के पथ पर वे,
चलता अविरत बढ़ने का क्रम;
बढ़कर दे पायेंगे अवश्य
वे अपने सफल कठिनतम श्रम।

चिर मिलें स्वास्थ्य-रक्षक साधन
तो वे चिर आगे बढ़ सकते;
पत्थर को तरल बना सकते,
हिमगिरि शिखरों पर चढ़ सकते।

उन्नति के श्रृंग बना सकते,
कर सकते सागर का मन्थन;
दे सकते हैं मानवता को
नूतन आयाम, नये चिन्तन।

क्यों प्रोत्साहन में हम चूकें?
उनकी गति क्या रुकने वाली?
उन्नति-विटपों की शाखाएँ,
हैं कभी नहीं झुकने वाली।

इतना बल रखते हैं कि किसी
भी महाभार से झुकें नहीं;
गति के हैं चरण सबल इतने,
जो किसी बिन्दु पर रुकें नहीं।

है कीर्तिमान-बल भी ऐसा,
चिर कीर्तिमान रचने वाला;
जो रिपु बनकर आ जायेगा
वह कभी नहीं बचने वाला।

जो नहीं पूर्व में कभी रहा
ऐसे भविष्य के निर्माता;
वे लघु दीपक हैं तो क्या है ?
चिर तिमिर भाग सत्वर जाता।

देने प्रकाश वे आये हैं,
आगत का स्वागत करना है,
जो रहें मार्ग में बाधाएँ,
उनको अवश्य ही हरना है।

चाहिए पराजय ही उनसे,
माँ, पिता और कुल गुरुजन को;
देते चलना अनुकूल पन्थ
है उनके गतिमय जीवन को।

सम्यक् विकास पा, वसुधा का
भी हैं विकास करने वाले;
खाकर अभाव की मार कभी,
संकल्प न हों मरने वाले।

उनके जीवन के प्रांगण में
आनन्द सजाते जाना है;
गाते हों जब आनन्द-गीत
तो संग हमें भी गाना है।

उनके उन्नति-अभियानों में
हमको भी साथ निभाना है;
उनके नृत्यों के संग हमें
भी अपना नृत्य दिखाना है।

वे क्यों संकोच करें कोई ?
उनको क्या कभी लजाना है ?
अपनी स्वतंत्रता का उत्सव
प्रति दिन-पल उन्हें मनाना है।

है स्वतंत्रता का अर्थ नहीं
अनुशासन का गुण खो देना,
हमसे ही तो वे सीखेंगे
चिर अनुशासन का व्रत लेना।

हममें यदि अनुशासन होगा
तो वे भी अनुशासित होंगे,
जा सकते हमसे कई गुणा
आगे, वे आशान्वित होंगे।

आशा-सम्बल दें उनको हम;
देंगे हम कभी निराशा क्यों ?
हम यदि निराश हो जाते हैं,
दें उन्हें निराशा-भाषा क्यों ?

उनके नयनों को हम प्रतिपल
साहस-किरणें ही दिखलायें;
घनघोर रुदन-वेला में भी
उल्लास-गीत चिर हम गायें।

जो शिशु आ चुके धरा पर हैं,
वे होते ही हैं रक्षणीय,
आनन्द-विभव देते जग को,
चाहे हों कितने भी कनीय।

अवदान दिया करते हैं वे,
कुछ तो दें हम प्रतिदान उन्हें;
वे मात्र प्यार के अभिलाषी;
चाहिए नहीं सम्मान उन्हें।

वे हैं समाज की नई पौध;
पौधों को हमें बचाना है;
वे देंगे रंग, सुमन, सौरभ;
फल भी तो उनसे पाना है।

इस भाँति पालना है उनको,
वे चढ़ पूरा परवान सकें,
पढ़-लिखकर, खेल-कूदकर वे,
खा-पीकर बन बलवान सकें।

अभिनव विद्वत्ता दे सकते;
हम करें व्यवस्था तो अभिनव;
करनी ही होगी वृद्धि, और
व्यय करना ही होगा वैभव।

चाहते शिशु कुछ बड़े हो पन्थ पाना;
चाहते क्रमशः सदन से वे निकलना,
अतः कुछ ऐसी व्यवस्था चाहिए ही;
बर्फ पर भी चाहते हैं वे फिसलना।

बालबाड़ी हो कि सम्यक् पाठशाला;
चाहिए ' ही पुस्तकालय-वाचनालय;
खेल के मैदान, शिशु-उद्यान भी हों;
चाहते हैं वे, करें कुछ नाट्य-अभिनय।

चाहते हैं वे, रहे कुछ संग्रहालय,
हों खिलौने और गुड़ियाँ सन्निकट ही;
हाँ, शुरू में तो व्यवस्था कठिन होती;
किन्तु क्या कठिनइयों की लगे रट ही?

चाहने पर कार्य कर पाना सरल है;
सुलभ हो सकते नहीं क्या उचित साधन?
स्वयं भी निर्माण करना सीख लेते;
माँगते कुछ भी नहीं हैं वे अकारण।

पथ-प्रदर्शन तो बड़ों को भी अपेक्षित;
क्या न शिशुओं का करें हम मार्ग-दर्शन?
क्या न अभिभावक रहें दायित्वमय चिर?
क्या न शिक्षक भी करें कर्त्तव्य-पालन?

शिशु भला कैसे करें दायित्व-पालन?
यदि नहीं गुरुजन करें निर्वहन उनका;
दें प्रशिक्षण और शिक्षण, संग इसके
क्या नहीं सम्यक् रहे आचरण उनका?

यह नहीं समझें पिता-माता कभी भी
मात्र है कर्त्तव्य उनका जन्म देना;
और यह भी वे कदापि नहीं समझ लें,
क्यों भला इतना बड़ा दायित्व लेना?

यदि उपेक्षा वे करें तो गृह उपेक्षित;
व्यर्थवत् होगा अखिल परिवार उनका;
अहित तो होगा अवश्य समाज का भी;
राष्ट्र पर भी यह बड़ा है वार उनका।

जन्म जिनको दें उन्हें क्या भार समझें ?
यदि नहीं सम्यक् करें, क्या प्यार उनका ?
जन्म देते हैं तभी आरम्भ होता
प्यार का, दायित्व का संसार उनका।

जन्म दें जिनको उन्हें सम्यक् बनायें,
सर्वदा उनमें निहित खुशियाँ जगायें,
क्यों भला हों वे अभावों में निरन्तर ?
सर्वसाधन दें, सदा उनको हँसायें।

हो सतत सर्वत्र ही आनन्दमयता;
सर्वथा आह्लादमय वातावरण हो;
तरणतालों की व्यवस्था भी अपेक्षित;
कर सकें आयास तो कुछ सन्तरण हो।

विश्व में पिछड़ा रहेगा देश अपना;
तनिक भी यदि शिशु यहाँ पिछड़े रहेंगे,
यदि नहीं समुचित व्यवस्था हम करेंगे,
तो नवोदित वर्ग से क्या हम कहेंगे ?

यदि नहीं कर्त्तव्य उनके प्रति करेंगे,
क्या भला उनसे कभी आशा करेंगे ?
हो न यदि प्रज्ञान की पूरी व्यवस्था,
ज्ञान की किरणें कहाँ से हम भरेंगे ?

विश्व बढ़ता जा रहा है प्रगति-पथ पर;
बढ़ रही पीढ़ी नई आगे अनवरत;
क्योंकि शिशुओं के लिए पर्याप्त निधि है;
हैं सभी सद्व्यय-निरत, कर्त्तव्य में रत।

व्यर्थ ही निज देश पर क्या गर्व करना ?
यदि मनुज हम हैं नहीं दायित्व-पालक;
हैं किसी भी राष्ट्र के बल उच्चतम वे,
जो प्रगतिरत बालिकाएँ और बालक।

प्रगति की सम्यक् व्यवस्था चाहिए ही;
हाँ, तभी सम्यक् प्रगति सम्भव बनेगी;
यदि नहीं पर्याप्त दीपक जगमगाते,
तो भला दीपावली कैसे मनेगी ?

यह नहीं समझें कि हैं उपकार करते;
और यह मानें नहीं, हैं दान करते;
यह बड़ा अपराध होगा, जन्म देकर
यदि न मानव-रूप में निर्माण करते।

चाहिए होना मनुज को पूर्ण मानव;
क्या नवोदित को नहीं निर्मित करें हम?
यदि नहीं पशु हैं, मनुज हैं; पूर्णता से
क्या नहीं जीवन-कलश उनके भरें हम?

पूर्णता के हेतु वांछित है व्यवस्था
पूर्णता में, हो नहीं शिशु-वर्ग वंचित;
हाँ, तभी तो पूर्ण वह आलोक देगा;
वह भविष्यत् को करेगा पूर्ण सुरभित।

यदि नहीं कर्त्तव्य यह अपना करें हम,
क्या नवोदित वर्ग फिर अपना करेगा?
उत्तरोत्तर प्रगति ही तो लक्ष्य नर का;
पूर्ण क्या इस लक्ष्य का सपना करेगा?

विकलता अन्तःकरण में, पुनः आती
काव्य-लेखन में; नहीं है चैन पल भर;
शिशिर के आघात, है हिमपात सहता
विपिन, तब है कोकिला मधुगीत गाती।

मानता कठिनाइयाँ भी शिशिरवत् हैं;
ग्रीष्मवत् हैं तो कहो कैसे? करें क्या,
क्या नहीं कर्त्तव्य लाने का नवोदय?
हम नहीं दायित्व-घट अपना भरें क्या?

देय तो इस हेतु है सर्वस्व अपना;
क्या नहीं कठिनाइयों का दौर झेलें?
क्या नहीं समझें निखिल गंभीरता को?
राष्ट्र के सौभाग्य से क्या खेल खेलें?

राष्ट्र तक ही लक्ष्य यह सीमित नहीं है,
विश्व के सौभाग्य का भी प्रश्न है यह;
प्रश्न पूर्ण विकास और भविष्य का है,
मानवों का दुःख होगा अधिक दुस्सह।

ध्यान हूँ इस ओर मैं आकृष्ट करता;
क्योंकि यह तो है परम कर्त्तव्य मेरा;
दीप यदि कोई नहीं बढ़कर जलाये,
न्यून कैसे तनिक भी होगा अँधेरा?

राष्ट्रहित पर चाहिए ही ध्यान देना,
राष्ट्र के आशा-कुसुम तैयार करना;
पूर्णतः ही पूर्ण करके कुल व्यवस्था,
अल्पतर क्रमशः निरन्तर भार करना।

विपिन विकसित हो रहा, होता रहेगा,
तनिक भी पीछे रहे क्यों देश अपना?
मानता होगी असुविधा; क्या नहीं है
पूर्णता के हेतु ज्वाला मध्य तपना?

कनक होता है खरा तपकर अनल में;
वस्तुतः कर्त्तव्य-पालन कठिन होता;
किन्तु करना चाहिए ही, मनुज हैं तो,
वत्स रोते हैं, भला क्या प्रौढ़ रोता?

चाहिए उत्सर्ग का शुभ कार्य अविरत;
सर्वदा संकल्प शुभ हों कर्म-परिणत;
कर्म यदि होंगे नहीं, तो क्या कथन से
ही बनेगा आत्मनिर्भर भव्य भारत?

सतत सम्यक् ही करें सारी व्यवस्था;
दे नहीं सकती सुफल, रह कर असम्यक्;
यदि उपेक्षा-शिथिलता करते रहेंगे;
क्या नहीं परिणाम होंगे पूर्ण घातक?

चाहिए ही शावकों को पूर्ण सुविधा;
वे रहें नर के कि जैसे भी इतर के;
चाहिए खगशावकों को मुक्त अम्बर;
क्या रहें वे नीड़ में ही? बिना स्वर के?

यदि विवशता हो असुविधाग्रस्तता की,
यदि सुलभ होंगे नहीं पर्याप्त अवसर,
क्या नई पीढ़ी बढ़ेगी मुक्त होकर,
पूर्ण प्रगति-विकास के उन्मुक्तपथ पर?

प्रखरता कैसे बढ़ेगी मनुजता की
यदि नहीं विस्तृत करें हम परिधि सारी ?
सतत कुण्ठा और घोर अतृप्ति की ही
क्या नहीं चलती रहेगी ही दुधारी ?

बहुत चूके, पर नहीं अब चूकना है,
क्या नहीं अविलम्ब हो कर्त्तव्य पूरा ?
क्या भला परिणाम पूरे मिल सकेंगे,
यदि रहे कर्त्तव्य अपना ही अधूरा ?

चतुर्थ सर्ग

अध्ययन-यात्रा

यों तो है ही अध्ययन सतत
करना मानव को जीवन भर;
बाल्यावस्था में शुभारम्भ
होकर चलता है इस पथ पर।

प्राथमिक पाठशाला हो या
हो नाम भिन्न; क्या है अन्तर ?
पथ तो होगा एक ही और
यात्रा करनी होगी उसपर ?

चाहिए भार अतिशय हल्का,
हो नहीं किताबों का गट्ठर;
शिशु खेल-खेल में पढ़ें और
हों सुलभ खिलौने भी सुन्दर।

सीखेंगे वे गिनती करना
रंगीन गोलियाँ ही गिनकर;
प्रिय होते उनको विविध रंग;
प्रिय लगते कुत्ते, खग, बन्दर।

खरगोश पालकर भी तो वे
पालना सीख ही जाते हैं;
लादें उनपर कुछ भार नहीं;
वे भार नहीं सह पाते हैं।

सर्वोत्तम है यह मार्ग कि हम
शिशुवत् ही उनके संग चलें;
सुन्दर संगीत, गीत सुन्दर
कानों को दें, उनको न मलें।

अति कोमल होते कान उभय;
उनको कदापि दें कष्ट नहीं;
जो देन मिली है नैसर्गिक,
उसको करना है नष्ट नहीं।

मस्तिष्क सुकोमल शिशुओं का,
चाहते नहीं वे कठोरता;
संख्या-परिमाणों में भी वे
चाहते निरन्तर गुणवत्ता।

सुन्दरता की है चाह उन्हें;
चाहते कहीं न असुन्दरता;
कल्पना किया ही करती है
उनके मानस की उर्वरता।

हम नहीं समझ पाते उनको,
वे हैं भविष्य के निर्माता;
चिर स्नेह और सुख दें उनको,
होंगे वे नवजीवन-दाता।

खेलते-कूदते, नृत्यों से
गीतों से आगे बढ़ना है;
बस, इसी भाँति क्रमशः उनको
चलना है, लिखना-पढ़ना है।

क्रमशः शिशु से होते किशोर
बालिका किशोरी बनती है;
उनकी है पृथक् ईद-होली;
अपनी दीपाली मनती है।

क्रमशः पुस्तकें अधिक होतीं
चाहते पत्रिकाएँ प्यारी;
कुछ चित्र और कुछ रंग रहें;
उनकी दुनिया होती न्यारी।

उनका जग क्यों मनहूस रहे?
चाहते कि हो उल्लास सतत,
उनका उत्साह बढ़ाकर ही
उत्साह प्राप्त करता भारत।

भारत के भावी रत्न वही;
वे ही हैं मानव-रत्नाकर;
उनका महत्त्व तो है अकूत;
ला सकते भारत सुन्दरतर।

आवश्यक बड़ी सावधानी;
उनके उर पर आघात न हो;
है हृदय सर्वथा अतिकोमल,
उसपर कोई हिमपात न हो।

कैशोर सदा सुकुमार वस्तु;
उसकी सम्हाल करनी पड़ती;
उसमें कोई त्रुटि है घातक;
यदि रिक्ति रहे, भरनी पड़ती।

कुछ आ सकता दायित्व-बोध,
सस्नेह उन्हें समझाने से;
यदि चूक गये हम यह अवसर
तो क्या होगा पछताने से?

क्या भला चूकना है अवसर ?
करनी हैं अखिल व्यवस्थाएँ,
अवलम्ब अगर मिलता सम्यक्,
तो बढ़-चढ़ जातीं लतिकाएँ।

अंकुर तो लघु ही होते हैं;
लतिकाएँ भी लघु होती हैं;
पर वे जब चढ़-बढ़ जाती हैं;
गृह पर हरीतिमा बोती हैं।

इस भाँति नवोदित भी सम्यक्
उन्नति-साधन यदि पाते हैं,
तो इसमें क्या सन्देह कि वे,
सम्पूर्ण मनुज बन जाते हैं।

वे बन जाते हैं महापुरुष,
युगपुरुष वही बन सकते हैं;
करने समाज को गरिमामय
दे निज तन-मन-धन सकते हैं।

चाहिए उन्हें सम्यक् शिक्षक;
प्राथमिक हेतु अनुभव विशेष;
हाँ, तभी नवोदित पा सकते
निज शिक्षण-संरक्षण अशेष।

वेतनभोगी ही नहीं रहें;
शिक्षक हों चिर अभिभावकवत्,
शोषण शिक्षक का जो करता,
है वह करता भारी पातक।

पर शिक्षक भी क्या रखते हों,
केवल धन-अर्जन की प्रवृत्ति ?
पूर्णतः चाहिए ही उनकी
चारित्रिक दुर्बलता-निवृत्ति।

क्या नहीं नवोदित तभी प्राप्त
कर सकते चारित्रिक वैभव ?
यह वैभव ही क्या नहीं मनुज
को देता सर्वोपरि गौरव ?

है राष्ट्र-शक्ति यह सर्वोत्तम;
सर्वोपरि यह देता महत्त्व,
सन्देह नहीं, यदि यह न रहे
तो जीवन बन जाता रौरव।

शिक्षा का भी तो होता है
यह बल चिर आवश्यक माध्यम,
यदि यह बल शिक्षक में न रहे,
क्या सार्थक हो सकता है श्रम ?

नैतिकता ही आधार-शिला
क्या नहीं चरित्र-सदन की है ?
क्या कभी अनैतिकताओं में
कोई गरिमा जीवन की है ?

उच्चतम नहीं क्या मनुज मूल्य ?
ईमान, सत्य, करुणा, सेवा ?
यदि ये न रहें तो क्या गौरव
दे सकता है कोई मेवा ?

ये मूल्य सदा हैं रक्षणीय;
नर शिक्षित या कि अशिक्षित हो;
यों रहे अशिक्षा क्यों कदापि ?
मानव चिर शिक्षित-दीक्षित हो।

है अभी किशोरों का प्रसंग,
वे पा सकते सम्यक् विकास;
सम्यक् यदि शिक्षा-दीक्षा हो,
सद्‌गुण आ जाते अनायास।

आगे होंगे दीक्षान्त-यज्ञ;
शिक्षा-दीक्षा का अन्त नहीं;
जैसे है अन्तिम शिशिर नहीं;
अन्तिम है कभी वसन्त नहीं।

क्या जाति और क्या सम्प्रदाय ?
व्यापक हों समानता का क्रम;
जीवन हो शिक्षा-दीक्षामय;
क्या उपाधियों तक ही हो श्रम ?

श्रम से शिक्षा-दीक्षा मिलती;
शिक्षक भी श्रम करते जायें;
केवल उपाधि है लक्ष्य नहीं;
वे अखिल अगति हरते जायें।

हाँ, तभी नवोदित कर सकते
निज में ऐसी प्रवृत्ति विकसित;
करते स्वाध्याय अखिल जीवन,
पा सकते ज्ञानालोक अमित।

यदि हों स्वाध्याय-चरित्र नहीं,
तो मानव क्या कर सकता है ?
है नहीं शान्ति-सुख पा सकता;
भब-कलश नहीं भर सकता है।

क्या नहीं शन्ति में ही सुख है ?
बन्धुत्व न क्या आवश्यक है ?
रखना दुराव या भेद-भाव;
क्या नहीं सर्वथा घातक है ?

यह नवोदितों को देनी है
शिक्षा-दीक्षा व्यवहारों से,
निज शब्दों और विचारों से,
सम्यक् उन्नत आचारों से।

वे कुछ ले सकते हैं अवश्य;
फिर क्रमशः क्रमशः वे लेंगे;
बढ़कर, अवश्य सम्यक् बनकर
श्रेयस्करता-परिचय देंगे।

वे शिशिर-कम्प हरते जायें;
चिर नव वसन्त-उन्नायक हों;
क्यों हों कदापि अश्रेयस्कर ?
वे सुख-सद्गुण के दायक हों।

इस भाँति बढ़े आगे समाज
शिक्षारत बाल-किशोरों से;
उत्पीड़ित ही क्यों रहे सदा
घातक बटमारों-चोरों से ?

वे भी समाज के रिपु ही हैं
जो बेईमान कभी होते;
पहले चाहे वे हँसते हों,
पर पीछे तो हैं ही रोते।

देता समाज ही है दुर्गुण,
शिशुओं में अवगुण नहीं कभी;
कुछ को मिथ्या-भाषण करते
शिशु जब सुनते, बोलते तभी।

पर वे रोके जा सकते हैं
ऐसें दुर्गुण अपनाने से;
जानते कहाँ हैं पहले से?
जानेंगे बात बताने से।

सब उन्हें प्रदान करें सद्गुण
अपने सम्यक् आचारों से;
वे सद्गुणमय होंगे अवश्य
सबके समुचित व्यवहारों से।

क्रमशः आगे बढ़ सकते हैं
गुरुजन के मार्ग बताने से;
केवल कथनी से क्या? प्रभाव
होता करनी दिखलाने से।

जीवन प्रयोगशाला ही है;
कथनी को करनी में लायें;
जो हम कहते हैं शब्दों से,
उसको करके भी दिखलायें।

मानव-जीवन है महायज्ञ,
यह करके भी दिखलाना है;
है हानि नहीं, जितना देना
उससे बढ़कर ही पाना है।

हम नहीं करेंगे यदि ऐसा,
तो क्या दायित्व निभायेंगे?
दिखला सकते क्या सज्जनता?
क्या देशभक्त रह पायेंगे?

भारत के भावी निर्माता
क्या होंगे नहीं नवोदित ही ?
क्या नहीं अपेक्षित, प्राप्त करें
शिक्षा-दीक्षा वे समुचित ही ?

इस पथ पर है विश्राम नहीं;
गति को अनवरत चलाना है;
यदि अन्धकार कम करना है,
दीपों को पूर्ण जलाना है।

रहते हैं सदा नयन-तारक,
जो शिशु-किशोर कहलाते हैं;
जो ज्योति-कल्पना अम्बर में
है उसे भूमि पर लाते हैं।

कहने की इच्छा कभी नहीं,
बेबस हो कहना पड़ता है
मानता, कि जर जन कहते हैं,
जरता से घातक जड़ता है।

चेतना चाहिए ही नर में
जाग्रत, वह रहे नहीं सोती;
हैं नवोदितों को देने ही
उच्चतर चेतना के मोती।

मन, वचन, कर्म तीनों से ही
उनका विकास चिर करना है,
जो ज्योति जागती है उसको
उनके भी उर में भरना है।

प्रति दिन तो आपाधापी है,
प्रति दिन है भाग-दौड़ होती;
इसपर जाता यदि नहीं ध्यान,
तो मानवता कंटक बोती।

पथ होता है कंटकाकीर्ण,
सर्वदा नहीं क्या ध्यान रहे ?
कर्त्तव्य नवोदित के प्रति हो
कार्यान्वित, उसका ज्ञान रहे।

चाहते कर्म करना शिशु भी,
जो पढ़ें-लिखें वह कर डालें,
कर्माधृत शिक्षा ही उत्तम;
चाहते जन्तु भी कुछ पालें।

स्वच्छता चाहते सब कुछ की;
रँगना पसन्द है उन्हें बहुत;
चाहते कि बनें नहीं केवल
ग्रन्थों को रट-रटकर विश्रुत।

रंगों से रखते प्रेम बहुत;
गिरि से, वन से, हरियाली से,
चाहते कि लें उद्यान-कला
वे सीख किसी भी माली से।

वृक्षारोपण के भी इच्छुक,
चाहते सींचना, संरक्षण;
खेतों को भी कर सकें स्वच्छ;
चाहते करें कृषि-उत्पादन।

कृषि हो अथवा हो हस्तशिल्प,
चाहते, बनें वे कर्मकुशल;
इस भाँति बनें वे कर्मवीर;
उद्योगों को भी दें निज बल।

चाहते कि बनें स्वनिर्भर वे;
अवलम्बित क्यों हों अन्यों पर?
अब तो वे अक्षम नहीं रहे;
श्रम से सकते उत्पादन कर।

चाहते कि भोजन बना सकें;
वन में जाकर वनभोज करें,
गृह में ही सीमित नहीं रहें,
नयनों में विस्तृति-व्याप्ति भरें।

चाहते विदेशों में जाना,
वे विश्व-नागरिकतामय हों;
क्यों यात्राभीरु बनें किंचित्?
वे हों साहसमय, निर्भय हों।

तालों में ही तैरा न करें;
निर्झर में भी तैरें, खेलें;
बढ़कर नौकायन भी सीखें;
कष्टों को भी हँसकर झेलें।

हाँ, कभी चैन में क्या रहना ?
आराम हराम सदा होता;
श्रम में ही तो रहता विकास;
जो श्रमिक नहीं है वह रोता।

सब श्रमिक और हों कृषक सभी;
हों ग्राम या कि हों बड़े नगर;
सबको देखें, निज श्रम से वे
कर सकते सब कुछ को सुन्दर।

सुन्दरता और स्वच्छता के
आग्रही नवोदित होते हैं;
कोई आ जाये, स्वच्छ करे,
इसका रोना क्या रोते हैं ?

क्यों ग्राम-नगर का भेद रहे ?
क्यों मात्र बुद्धिजीवी नर हो ?
कृषि-श्रम हो या कृषकेतर श्रम;
क्या जीना है परनिर्भर हो ?

कृषि की महिमा, श्रम की महिमा
में ही महिमा है मानव की;
है निहित राष्ट्र-महिमा इसमें;
यह दिशा विभव की, गौरव की।

मेधा विशेष कुछ प्रौढ़ों से
कुल नवोदितों में रहती हैं;
उनकी प्रतिभा के क्या कहने ?
वह निर्झरिणी-सी बहती है।

हिमगिरि प्रपातवत् है प्रतिभा;
बहती अजस्र यह धारा है;
चाहती पूर्ण सक्रिय रहना;
माँगती न कभी सहारा है।

दें उन्हें मार्गदर्शन केवल,
दें उनको आवश्यक सम्बल;
क्यों भला अकिंचन रहें कभी ?
क्यों रहें कदापि विवश-दुर्बल ?

है यही विजय प्रति गुरुजन की;
वह नवोदितों से विजित बने;
बढ़ सकें नवोदित यदि आगे;
हों उन्नतिमय तो पर्व मने।

पंचम सर्ग

परिव्रजन

अनवरत बढ़ रही है इच्छा,
हो परिव्रजन, हो परिभ्रमण;
केवल समीप ही क्या जाना ?
हो चिर व्यापकतर परिदर्शन।

चिर चरैवेति, चिर चरैवेति,
है पुराचीन आश्रम-जीवन,
इसको कार्यान्वित करना है;
निज़ ग्राम-नगर का क्यों बन्धन ?

विस्तृत सदैव कल्पना करें;
मिलती है उद्‌भावना नवल;
हैं अमित प्रेरणाएँ मिलती;
मानव क्या होते मेरु अचल ?

हों अटल-अचल सिद्धान्तों पर;
इसमें चरित्र का पोषण है;
पर्वत पर चढ़कर सब सीखें;
इसमें अदम्य चिर यौवन है।

गिरि-आरोहण करना ही है;
करना है वन में भी विचरण;
चिर दुस्साहसिक अभय होना;
आवश्यक यह जीवन-दर्शन।

शैलों में ही है शिला निहित
आलेकित जीवन-दर्शन की;
जिसमें है अनुदारता नहीं
संकीर्ण वृत्तिमय चिन्तन की।

चलना विशालतामय पथ पर;
चढ़ना उन्नत गिरिश्रृंगों पर;
तैरना सिन्धु की लहरों पर;
उड़ने को है विस्तृत अम्बर।

दौड़ना असीम दिशाओं में;
समतल विशाल मैदानों में;
खोजने प्रकृति-छवि जाना है
गिरि-गह्वर में, वीरानों में।

कहने को जो भी कहे जगत्
अतिभावुक अथवा मस्ताना;
अभियानों के पन्थी को तो
कहता ही है जग दीवाना।

हैं आविष्कार यही करते;
होते ये ही अनुसन्धानी;
इनको क्या समझेगी दुनिया
संकीर्ण स्वार्थ की दीवानी ?

हाँ, बनें नवोदित खोजी भी;
अनुसन्धानी, आविष्कारक;
सर्वत्र व्यवस्था हो प्रशस्त;
कोई न बने पथ में बाधक।

पर जब तक रहते वे किशोर,
पढ़ना-लिखना भी हो व्यापक,
सीख ही सकेंगे सत्य रूप,
क्रमशः करते-करते नाटक।

संगीत, नृत्य, नाटक भी तो
होते जीवन में आवश्यक;
हो चित्रकला या मूर्तिकला,
करते विकास हैं आराधक।

वाङ्मय का हो समुचित विकास,
साहित्य ललित भी हो विकसित;
सन्तुलित-समन्वित हो सब कुछ,
क्या हो समाज इनसे वंचित ?

बढ़ सकें नवोदित भी प्यारे
चिर सर्वसमन्वय के पथ पर;
विज्ञान और तकनीकों से
भी करें राष्ट्र को सबल-प्रखर।

निर्मलता की धारा अजस्र
प्यारे भारत में बहे सदा;
है भागीरथी नई लानी
हरने को भारत की विपदा।

भूगोल देश का महिमामय,
सर्वत्र सदैव विविधतामय;
छवि-छटामयी है प्रकृति यहाँ;
भारत समस्त है चिर निर्भय।

यह सब कुछ देखेंगे किशोर
तो कर देंगे यह छवि चित्रित;
मूर्तियाँ बना देंगे सुन्दर;
कर देंगे अखण्डता अंकित।

सागर-विस्तृत, पर्वत- उन्नत
हो नवोदितों का दृष्टिकोण,
इस हेतु चलेंगे, दौड़ेंगे;
क्षितिजों का देंगे तोड़ मौन।

उड्डयनों के भी हेतु नहीं
रहती है आयु कहीं सीमित;
शिशु जन्म पा रहे अम्बर में;
पाते विकास भी रहते नित।

यदि नहीं मनुज उड्डयन करे
तो होगा नभ का ज्ञान कहाँ?
देखे निहारिका नहीं निकट
से तो होगा उत्थान कहाँ?

सब कुछ सीमित हो तो भी क्या
सीमित हो जाये परिव्रजन?
बढ़ना है, अविरत बढ़ना है
कर भग्न धरातल के बन्धन।

रोबोट नहीं यदि बने मनुज
तो क्या वह नहीं बना सकता?
अम्बुधि के महातलातल में
उनको अवश्य पहुँचा सकता।

देना है व्यापक दृष्टिकोण,
हों कभी कूपमण्डक नहीं
हो सत्यकथन से अहित भले,
क्या कहें बात दोटूक नहीं?

ध्रुव है यह, 'जयते सत्यमेव',
क्या है असत्य विजयी होता?
है सत्याग्रही देश भारत,
चाहे हो कुछ इसमें खोता।

निर्माण नवोदित का ऐसा
हो, जग में हों वे अद्वितीय;
सब कुछ चाहे छोड़ना पड़े
सिद्धान्त नहीं छोड़ें स्वकीय।

ऐसा निर्माण कठिन होगा;
निर्माताओं को करना है,
शिक्षकों और अभिभावकगण
को घूट अवश्य यह भरना है।

हाँ, तभी नवोदितगण भी तो
ऐसा करना कुछ सीखेंगे;
जो हो उज्ज्वलतर-निर्मलतर,
ऐसा भविष्य हमको देंगे।

उनको बनना है उज्ज्वलतर,
जिससे वे ऐसा युग लायें;
निर्मलतर भी बनना ही है,
वे निर्मलतरता दे पायें।

पायेंगे जब हमसे यह सब,
तो निज सन्तति को वे देंगे;
छात्रों-छात्राओं को देंगे;
देंगे विशेष वे, कम लेंगे।

इस तरह बने अपना भारत;
सारा समाज, परिवार बने;
फिर तो बन जाये महादेश;
क्रमशः समस्त संसार बने।

बनने का यह क्रम हो अनन्त;
हो सत्वर अन्त बिगड़ने का;
आक्रमण करे कोई न अगर
तो हो समाप्त क्रम लड़ने का।

लड़ना बुराइयों से ही है;
लड़ना है अखिल अभावों से;
इनका अस्तित्व मिटाना है;
लड़ना है सदा दुरावों से।

हों शान्ति-ऐक्य के रक्षक सब;
चिर प्रेम-दया के दायक हों,
उन्नत चरित्र यों सबका हो
तो सभी राष्ट्र-उन्नायक हों।

ऐसा कार्यक्रम हो निर्मित,
वे नियमित योगाभ्यास करें,
उन्नत आचार-विचारों से
निर्मित उन्नत इतिहास करें।

बन सकें नवोदितगण ऐसे,
कार्यक्रम देना है ऐसा;
पाठ्यक्रम का भी हो सुधार;
रह सके नहीं जैसा-तैसा।

करना सुधार है जीवन का
तो पाठ्यक्रम क्यों रहे विकृत ?
देना है ऐसा रूप उसे
जो चिर सुधार पर हो आधृत।

सम्पूर्ण व्यवस्था में सुधार,
अनवरत सुधार अपेक्षित है;
बिखरी-बिखरी रह जायेगी,
यदि होती नहीं समेकित है।

नव तरु प्रति वर्ष लगाने का
अभ्यास पूर्ण है आवश्यक;
निज पर्यावरण सजाने को
करना है सिक्त यथावश्यक।

आवश्यक होती हरीतिमा;
सूना-सूना क्यों भू-तल हो ?
होकर आकृष्ट करे वर्षा,
घन, क्यों कृषि-भूतल निर्जल हो ?

क्यों अनावृष्टि-दुर्भिक्ष रहें ?
प्रिय भारत श्री-सम्पन्न बने ?
निज शस्यश्यामला भूमि भला
क्यों दीना, महाविपन्न बने ?

है भूमि-प्रचुरता सुलभ हमें;
फिर अन्न-सुलभता क्यो न रहे ?
श्रम करने का अभ्यास बढ़े;
क्यों व्यर्थ कभी भी सलिल बहे ?

सब करें सलिल का सदुपयोग
चिर तो जीवन सार्थक होगा;
सिंचन तरुओं का होगा तो
निज वन-वैभव व्यापक होगा।

व्यापक होगा जल-सदुपयोग;
फल-सुमन हमें मिल पायेंगे;
छाया पायेंगे जो पन्थी
वे गुण कुछ भी तो गायेंगे।

प्रेरणा-प्राप्ति सम्भव होगी;
कुछ तो अनुकरण करेंगे ही;
जो रिक्त भूमि होगी अपनी,
तरुओं से उसे भरेंगे ही।

उद्यान इसी विधि से बनते;
लगते हैं विटप लगाने से;
जैसे संगीत सुलभ होता
कुछ गाने और बजाने से।

तरु क्या देते हरीतिमा ही ?
उनमें रहता संगीत भरा;
झूमतीं प्रशाखा- शाखाएँ;
पल्लव देते हैं नृत्य-त्वरा।

गाते विहंग शाखाओं पर;
वे अपने रंग दिखाते हैं;
जाने वे कितने मधुमय स्वर
जाते सुदूर तो लाते हैं।

विटपों का भी संगीत-नृत्य
का निज संसार निराला है;
करते हैं मर्कट-विहग नृत्य
तरुवर ने जिनको पाला है।

पालना चाहिए ही शिशु को;
चाहिए प्रशिक्षित भी करना;
तरु यह शिक्षा भी देते हैं;
उनसे पल भर भी क्यों डरना ?

किस भाँति कहूँ, कितनी ऊर्जा,
कुल नवोदितों में होती है;
कितनी ही रुचिर कल्पनाएँ
उनके मन-गृह में सोती हैं।

पर्याप्त और समुचित सुविधा
देकर ही उन्हें जगाते हैं;
देते वसन्तवत् जब अवसर
तो मन-पिक उनके गाते हैं।

कवि तो अत्यल्प लिख रहा है,
पर सम्भावना अपरिमित है;
साधन होते अत्यल्प सुलभ,
पृष्ठों की संख्या सीमित है।

जो पढ़ें बढ़ाकर ही समझें;
कुछ अपनी भी कल्पना करें;
कुछ दीपशिखा उन्नत कर दें;
दीपक में पूरा स्नेह भरें।

सबका होगा ही लाभ अमित;
शिक्षक भी तो अभिभावक हैं;
परिवार, समाज सुशिक्षा दें;
चाहते सभी नरशावक हैं।

पशु-शावक नहीं उपेक्षित यदि,
नरशावक रहें उपेक्षित क्यों?
जो आवश्यक साधन होते
उनसे वे होंगे वंचित क्यों?

परिवार और विद्यालय में
नव वातावरण बनाना है;
सरकार, समाज, उभय में ही
नूतन चैतन्य जगाना है।

अन्यथा नवोदित बोलेंगे—
'हमको अधिकार हमारे दो;
चाहिए हमें जितने साधन,
हमको सारे के सारे दो।'

विद्यालय में, परिवारों में
नूतन अध्याय बनायें हम;
चाहिए समाज और शासन
में नहीं चलाना क्या यह क्रम ?

घबड़ाओ नहीं नवोदितगण !
चलते हम संग तुम्हारे हैं;
पाओगे ही उतने साधन
जितने अम्बर में तारे हैं।

है बेईमान नहीं बनना;
ईमानदार ही रहना है;
भय क्यों हो ? समुचित बातों को
निर्भयता से ही कहना है।

हाँ, जो कर्त्तव्य नहीं करते
वे एक दिवस रोयेंगे ही,
जो प्रहरी नहीं जागते हैं
वे तो सब कुछ खोयेंगे ही।

षष्ठ सर्ग

अभियान

चाहिए उनके लिए अभियान करना,
कीर्तिमानों से जिन्हें है कलश भरना,
क्या भला बैठे करें केवल प्रतीक्षा ?
कुछ करें, आगे बढ़ें, फिर हो समीक्षा।

हम करें यदि तो नवोदित सीख पायें;
हम स्वयं करके उन्हें करना सिखायें;
हाँ, हमें होगी बहानी ज्योति-धारा;
टूट कर देता नहीं आकाश तारा।

कर्म की ऊर्जा अमित रखते नवोदित;
चाहिए उनके लिए उपकरण समुचित;
चाहते हैं वे नई धारा बहाना;
चाहते आलोक वे नूतन जगाना।

हाँ, सदा वे चाहते हैं दीपमाला;
रात्रि में भी चाहते दिन-सा उजाला।
चाहिए हमको अधिक अवसर सजाना;
जो कहीं भी हों सुलभ उनको जुटाना।

जिस तरह है बाल रवि चढ़ता दिवस भर,
उपकरण भी हम बढ़ा पायें निरन्तर।
चाहिए इस हेतु जो वित्तीय साधन,
क्या नहीं इसका त्वरित ही हो प्रबन्धन?

चाहिए करना अनवरत समायोजन;
सुलभ अविरत ही करें हम मार्गदर्शन;
प्रकृति है अगणित सितारों को सजाती;
शिशिर पर मधुमास की वीणा बजाती।

देख घन जैसे मयूरी नृत्य करती,
विपिन-प्रांगण में अमित आनन्द भरती।
सिन्धु ज्यों है पूर्णिमा को ज्वार लाता,
देख झंझावात है लहरें उठाता।

निर्झरों में भी तुमुल उठतीं तरंगें;
आँक सकता कौन है उनकी उमंगें?
क्या नहीं अभियानकामी हैं नवोदित?
चाहते हैं उपकरण-सुविकास वे नित।

वे भला कब तक रहें इस भाँति वंचित?
क्या रहे प्रतिभा अखिल उनकी अविकसित?
स्वर्ण-दिन, रजताम रजनी ला सकेंगे,
उपकरण, अवसर उचित यदि पा सकेंगे।

दे सकेंगे वे कला-विज्ञान अभिनव;
राष्ट्र को भी दे सकेंगे नव्य गौरव।
क्या नहीं निज देश की क्षति हो रही है?
यदि नई प्रतिभा-सुमेधा सो रही है?

राष्ट्रहित यदि चाहती सरकार, सोचे;
क्या नहीं समुदाय भी, परिवार सोचे ?
सोचने से ही नहीं है काम चलता;
जब जलाते हैं तभी है दीप जलता।

अतः सोचें ही नहीं, करके दिखायें;
देश को आसन्न संकट से बचायें।
आज की क्षति क्या नहीं उत्पन्न करती
है महासंकट, नहीं यदि स्थिति सुधरती ?

रोग तो आरम्भ में लघु ही रहेगा;
यदि नहीं उपचार हो तो वह बढ़ेगा।
चाहिए उपचार भी तो पूर्ण सम्यक्;
पथ्य-ओषधि की व्यवस्था रहे व्यापक।

इस तरह ही तो व्यवस्था है अपेक्षित;
ध्यान रखना चाहिए, त्रुटि हो न किंचित्।
बीन का बारीक भी यदि तार टूटे,
बज सकेगी क्या ? भले आकाश टूटे।

क्षेत्र हैं अभियान के होते अपरिमित;
भूमि, वन, पर्वत, महाम्बुधि, नभ असीमित।
ग्रह-उपग्रह क्षेत्र हैं अभियान के भी;
क्षेत्र होते हैं कला-विज्ञान के भी।

अन्तरिक्षों में गमन सामान्य होता;
चन्द्रमा को पा चुका, शिशु है न रोता।
अन्त होता ही नहीं अभियान का है;
भाँति जिस होता नहीं दिनमान का है।

विहग प्रतिदिन क्या नहीं उड्डयन करते ?
क्रम चलाते दिवस भर जब तक न मरते।
विटप से ही हैं नहीं सन्तोष पाते;
व्योम में उड़ते हुए निज गान गाते।

क्या भला रोबोट की रचना असम्भव ?
पा सकेगा देश रवि-अभियान-गौरव।
जल अमित नद-निर्झरों का व्यर्थ हो क्यों ?
सौर ऊर्जा भी भला असमर्थ हो क्यों ?

सैकड़ों होतीं दिशाएँ अभ्युदय की;
हैं अमित सम्भावनाएँ भी विजय की;
जो नवोदित हैं उन्हें क्या दें न अवसर ?
उड्डयन को चाहते अभियान-अम्बर।

स्वयं वे कैसे करेंगे कुल-व्यवस्था ?
अल्प ही तो है अभी उनकी अवस्था।
किन्तु क्या सन्देह, वे कुछ कर सकेंगे ?
राष्ट्र के घट को बहुत कुछ भर सकेंगे।

बात कविता की नहीं, है व्यावहारिक;
साधनों से ही मिलेगी सिद्धि भौतिक।
क्या अभी अध्यात्म की है बात करनी ?
मात्र नैतिकता-विभा है अभी भरनी।

शब्द से ही वे नहीं नैतिक बनेंगे;
देख उसका रूप वे वैसा करेंगे।
सतत भौतिक रूप भी क्या हो अनैतिक ?
सर्वदा नैतिक रहें कुल कर्म दैनिक।

पूर्ण नैतिकता-विहित भौतिक रहे पथ,
सर्वदा एकात्म नैतिक मार्ग से हों पूर्ण इति-अथ।
शान्ति सुख-सम्पत्ति होगी ही निरन्तर;
चाहिए चलकर दिखाना मार्ग सुन्दर।

रुचिरतर परिदृश्य हो, परिवेश भी हो;
सर्वदा प्रियतर समाज-स्वदेश भी हो;
चाहिए एकात्मता परिवार औ, संस्थान की भी;
कर्म के ही संग गति हो ज्ञान की, अभियान की भी।

मानता हूँ प्रश्न यह पूरा जटिल है;
किन्तु हल अभियान से होता अखिल है।
सतत अधिक विकास भी लाना पड़ेगा,
कर्म का आलोक फैलाना पड़ेगा।

कल्पना का सर्वदा उत्थान भी हो,
ध्येय सारे देश का कल्याण भी हो।
आदतें ऐसी अभी से डालनी हैं;
क्या नहीं चिर ज्योति इनकी पालनी है ?

समझनी हैं राष्ट्र की सारी व्यथाएँ,
रूढ़िवादी दूर करनी हैं प्रथाएँ।
सतत राष्ट्र-सुधार के हों बीज विकसित;
प्रगतिमय आयाम भी हों पूर्ण परिचित।

शक्ति के ही संग साहस भी बढ़ायें,
सिन्धु-परिचय प्राप्त कर जीवन जगायें।
गर्व-शिखरों पर करें हम ध्वजोत्तोलन;
ढूँढ़ते चलना सदा है शिखर नूतन।

सप्तम सर्ग

उपसंहार (वार्त्ता)

हे भारत के आशाकुसुमो!
हे प्रिय बच्चो -बच्चियो! सुनो;
खेलो, कूदो, नाचो, गाओ;
तुम पढ़ो, लिखो, फिर उसे गुनो।

है सीधी-सादी बातचीत;
यह है कोई उपदेश नहीं;
बातें हैं एक हितैषी की;
इनसे होगा कुछ क्लेश नहीं।

पहले समाज़ से बात हुई;
शिक्षकों और अभिभावक से;
कुछ पाठ्य क्रमों की बात हुईं;
फिर बातें की हैं शासक से।

चाहता नहीं कि किताबों का
तुमपर इतना गुरु भार बने;
पढ़ सकों पुस्तकें पाठ्येतर;
पढ़ने का पूरा प्यार बने।

मिल सकें सूचनाएँ विशेष;
इसके अतिरिक्त मनोरंजन;
कूछ साहस हो, उत्साह बढ़े;
खुल सकें विश्व की ओर नयन।

क्यों वातावरण पुराना हो?
तुमको तो नया बनाना है;
अपनी प्रतिभा, मेघा, श्रम से
अपना संसार सजाना है।

पर्यटक बनो, दुनिया देखो;
तुम क्रमशः चढ़ो पहाड़ों पर;
नदियों में तैरो, वन देखो;
देखो उड़कर सारा अम्बर।

नक्षत्रों को भी तुम देखो;
देखो सारा तारामण्डल;
यह भी देखो, कैसे नदियाँ
पर्वत से नीचे लातीं जल।

तुम जन्मजात हो कलाकार;
मत रहना दूर कलाओं से;
निज वैज्ञानिक प्रतिभा से तुम
भर सकते जग रचनाओं से।

वार्त्ता यह नहीं काल्पनिक है;
तुम जन्मजात कल्पनाकार;
इसमें क्या है सन्देह कि तुम
दे सकते रचनाएँ अपार?

सागर-मन्थन कर सकते हो,
कुल रत्नराशि ले सकते हो,
भारत माँ के करकमलों को
तुम अमृत-कुम्भ दे सकते हो।

तुम तो अनन्त ऊर्जामय हो,
निर्भय होकर अभियान करो;
प्रत्येक होड़ में आगे बढ़,
नव कीर्तिमान-निर्माण करो।

तुम कूद नदों में सकते हो,
गुरु सिन्धु पार कर सकते हो,
निज गति, निज धावकता से चिर
तुम नवजीवन भर सकते हो।

बन्दूक चला सकते हो तुम,
यदि सकते हो बाँसुरी बजा;
सुमनों, तरुओं, झरनों से तुम
सकते सारा उद्यान सजा।

X X X

प्रतियोगिता-विजेता हो तुम,
स्पर्धाओं के हो सम्राट्,
खोल सकोगे मेधा से तुम
बन्द नियति के वज्रकपाट।

जहाँ नहीं गति है मारुत की,
जा सकते हो तुम सकुशल,
सदा स्वास्थ्य की करो सुरक्षा,
बढ़ता रहे तुम्हारा बल।

यह समाज तो रूढ़िग्रस्त है;
रागद्वेष - घृणा - पीड़ित;
तुम्हीं क्रांति के दूत बनोगे;
प्रेम-शान्ति से रह कर नित।

सबके प्रति बन्धुत्व सर्वदा
रखने में सबका सुख है,
जाति-पाँति में, सम्प्रदायगत
भेदभाव में चिर दुख है।

नहीं बाज या गिद्ध बनो तुम;
सतत रहो बनकर हारिल,
नहीं धरातल तक पग सीमित,
पन्थ मिले कैसे पंकिल?

ऊँचाई पर उड़ जाना है;
उड़ते-उड़ते गाना है;
गाते-गाते भी उड़ना है;
कभी नहीं पछताना है।

कभी हार हो जाये तो भी
नहीं हारना तुम हिम्मत;
बढ़ते जाना बन अभियानी,
जब तक पूर्ण नहीं हो व्रत।

लक्ष्य तुम्हारा हो ऐसा ही,
पथ पर कहीं विराम नहीं;
कभी. लक्ष्य पाने से पहले
करना है विश्राम नहीं।

पथ हो सकता है कुछ लम्बा,
चलने से लघु हो जाता,
चढ़ते-चढ़ते गिरिश्रृंगों पर
मनुज नहीं क्या चढ़ पाता?

नहीं कल्पना की बातें;
प्रत्यक्ष देखने में आया;
वीर तेनजिंग ही भारत का
एवरेस्ट पर चढ़ पाया।

कोलम्बस की और डिगामा
की यात्रा के उदाहरण
तुम भी करके दिखला सकते;
बढ़कर पूर्ण करोगे प्रण।

छोटे हो तो बड़े बनोगे
ही, इसमें क्या संशय है?
निष्क्रिय सदा पराजित रहते,
सक्रिय की होती जय है।

नहीं देर तक जगो निशा में;
प्रातः रहो नहीं सोते;
प्रतिदिन हो व्यायाम तुम्हारा;
स्वस्थ सभी ऐसे होते।

नियम और अनुशासन की भी
रक्षा करते सदा रहो;
कभी किसी के बहकावे की
धारा में तुम नहीं बहो।

उत्तेजना न आने देना
निज मन में, संयत रहना;
कभी दुःख कुछ हो सकता है;
सदा शान्त रहकर सहना।

पूरा पढ़-लिख लोगे तो तुम
भी विद्वान् बनोगे ही;
धन की क्या चिन्ता? श्रम से
सम्यक् धनवान बनोगे ही।

●